Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

वेदों में प्रतिबिम्बित संगीत

डॉ0 रोमा अरोरा
एसोसिएट प्रोफेसर–संगीत गायन,
राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Volume 4, Issue 3
Page Number : 149-154

Publication Issue :
May-June-2021

Article History
Accepted : 01 June 2021
Published : 15 June 2021

शोध सारांश – भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों का वाङ्मय एवं सबसे प्राचीन, नियमित, सुसंबद्ध संगीत हमें वैदिक काल में ही मिलता है। वैदिक युग का प्रारम्भ आर्यों के आगमन से ही माना जाता है। इस काल में संगीत की बागडोर ब्राह्मणों के हाथ में थी। वे ही वेदाध्ययन कर धार्मिक संस्कार सम्पन्न कराते थे। ब्राह्म ऋत्विज संगीत शिक्षा भी दिया करते। गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का विकास वैदिक युग में हुआ। वेदचतुष्टयी में गीत के अनेक प्रकार स्तोम, स्त्रोत, गाधिन, गायत्रिन, साम आदि का उल्लेख मिलता है। इस काल में वीणा वादन के अतिरिक्त शंख, मेरी दुंदुभि, तूणव, वाण आदि प्रचलित थे। वैदिक वाङ्गमय में वर्णित उदात्तः अनुदात्त एवं स्वरित के आधार पर ही पाणिनी ने सप्तस्वरों को व्यहृत किया। इस काल में आर्यों ने संगीत को धर्म के आवरण में लपेट कर गंगाजल के समान पवित्र कर दिया।

बीज शब्द– नाद, ब्रह्मानन्द, सहोदर, गीर, गातु, सामगान, अर्चिक, गाधिक सालिक।

यह सर्वज्ञेय है कि शब्द हमारे चतुर्दिक विद्यमान रहता है। शब्द का पर्याय है नाद, जो संगीत का आधार है। नाद के बिना स्वर गीत–नृत्य कुछ भी सम्भव नहीं है। मतंग ने नाद की महिमा का वर्णन वृहद्देशी में इस प्रकार किया है–

"न नादेन बिना गीत, न नोदन बिना स्वराः।

न नादेन बिना नृत्तं तस्मान्नदामकं जगत्।।[1]

संगीत मानव के अन्दर सृष्टिकाल से ही रहता है। पं0 शारंगदेव ने प्राणिमात्र के सम्पूर्ण जगत को नादाधीन माना है[2] वस्तुतः नाद और जीव एक ही है। नाद के दोनों रूप आहत और अनाहत ये मानव देह में स्थित रहते हैं। आहत नाद से स्वर की उत्पत्ति होती है। इसमें मन को एकाग्र तथा जीवन को आनन्द प्रदान करने की अपूर्व क्षमता है। अनाहत नाद जो कानों को सुनाई तो नहीं पड़ता परन्तु इसमें आत्मानंद की ऐसी क्षमता है जिसका प्रमाण नानक, कबीर, सूर आदि है। इनके अनुसार यद्यपि अनाहत नाद लोक रंजक नहीं है परन्तु मुक्ति दायक है।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

शारंगदेव के मतानुसार गायन, वादन और नृत्य तीनों नाद की अभिव्यक्ति के रूप तथा नाद के अधीन हैं–

"गीत नादात्मकं वाद्यं नाद व्यक्त्या प्रशस्यते।

तद्यानुनतं नृतं नादाधीनमस्त्रयम्।।"

संगीत एक सजीव व अमूर्त कला है, जिसमें कलाकार एवं श्रोता दोनों के जीवन के परमानन्द की सम्भावना होती है। इसलिए इसे **'ब्रह्मनंद सहोदर'** कहा गया है।

भारत में संगीत परम्परा बहुत प्राचीन है। विभिन्न शास्त्रकारों ने संगीत को अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है–

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।"[3]

तात्पर्य यह है कि संगीत एक अन्विति हैं, जिसमें गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का समावेश है। इसी परिभाषा का अनुसरण प्राचीनकाल से अद्यतन पाया जाता है। प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में संगीत का व्युत्पत्तिगत अर्थ **"सम्यक् गीतम्"** रहा है। नाट्यशास्त्र के अनुसार गीत, नाटक के प्रमुख अंगों में अन्यतम है तथा वादन एवं नृत्य दोनों उसके अनुगामी है। कालिदास के मेघदूत में 'संगीतार्थ' के उपादानों में गीत, वाद्य, नृत्य तीनों की आवश्यकता निर्दिष्ट है।[4] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में गीत, वाद्य, नृत्य तथा नाट्य का उल्लेख सहचरी कलाओं के रूप में हुआ है।[5] प्राचीन शिल्प तथा भित्त चित्रों में तीनों का सम्यक् दर्शन उपलब्ध होता है।

भारतीय परम्परानुसार संगीत का उद्गम भी अन्य कलाओं की भाँति वेदों से हुआ है। वेद का बीज मंत्र है "ओऽम"। अ़उ़म तीन प्रमुख शक्तियों का पुंज ईश्वर है। ग्रन्थों में भी कहा गया है–

"आकारो विष्णु रुदिष्ट उकारास्तु महेश्वरः।

मकारोणोच्यते ब्रह्म प्रणावेनमयों मतः।।

इसी बीजमंत्र से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है, इसी से नाद, नाद से स्वर, स्वर से 'संगीत' की उत्पत्ति हुई। संगीत के सप्त स्वर "ओऽम" के ही अन्तर्विभाग है। स्वर की उत्पत्ति "ओऽम" के गर्भ से होने के कारण यथार्थतः "ओऽम" ही संगीत का जनक है। इसी में समस्त कलाएँ निहित हैं। इस "ओऽम" में स्वर, लय, ताल का समावेश है। "ओऽम" का साधक संगीत का यथार्थ रूप ग्रहण करने में सफल होता है। इस प्रकार संगीत के जन्म से लेकर भिन्न–भिन्न मत मिलते हैं परन्तु ऐतिहासिक तथ्य अभी तक प्राप्त नहीं है। संगीत, शताब्दियों पुरानी कला नहीं है। यह तो आदि कला है। आदि मानव सुख–दुःख का प्रथम अनुभव अपने साथ संगीत को लेकर आया होगा। सभ्यता के विकास के साथ–साथ संगीत अपनी उत्कृष्टता की ओर पहुँचता गया। जन्म से मृत्युपर्यन्त संगीत, मनुष्य का साथ नहीं छोड़ता बल्कि इसके बिना तो मानव का कोई भी सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक संस्कार पूर्ण ही नहीं होता।

भारत के सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से वैदिक युग ही प्राचीनतम युग है किन्तु ईसा मसीह के 20, 25 हजार वर्ष पूर्व भी सृष्टि का विकास हो चुका था। ऐसा खोदाई में प्राचीन मूर्तियों तथा शिलालेखों से ज्ञात होता है। प्राप्त उल्लेखों के अनुसार भारतीय संगीत का जन्म भी सृष्टि के आविर्भाव के साथ ही हो चुका था और ईसा मसीह के काल में भारतीय संगीत काफी विकसित रूप में था।[6]

शास्त्रीय संगीत भारतीय सभ्यता, संस्कृति व समाज का दर्पण होता है। जैसे–जैसे मानव संस्कार परिमार्जित हुये, सभ्यता व संस्कृति में परिवर्तन हुये और समाज में भी बदलाव आया, वैसे–वैसे ही शास्त्रीय संगीत का भी उत्तरोत्तर विकास होता गया।

हमें अपना सबसे प्राचीन, नियमित, सुसंब(संगीत, वैदिक काल से ही मिलता है एवं भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों का वाÂमय भी हमें वैदिक युग में ही मिलता है। 1000 ई0पू0 से 700 ई0पू0 तक यह युग माना जाता है।

भाषाविदों के अनुसार वैदिक युग का प्रारम्भ आर्यों के आगमन पर होता है। आर्य जाति ने भारत पर लगभग 1500 वर्ष ई0पू0 आक्रमण किये। इन्द्र, वायु और सूर्य के उपासक थे। ये आर्य संस्कृत भाषा का प्रयोग करते थे। इन्होंने तत्कालीन समाज का विभाजन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र चार वर्णों में कर दिया। आर्यों का संगीत का ज्ञान उत्कृष्ट कोटि का था। वे संगीत को आत्मा व परमात्मा का संयोग करने वाली श्रृंखला मानते थे। इनके धर्म ग्रन्थ 'कवित्त' के रूप में थे। इनके घरों में ईश्वर की संगीतमय आराधना नियमपूर्वक होती थी। ब्राह्मणों का कार्य वेदों तथा अन्य ग्रन्थों का पठन–पाठन तथा धार्मिक संस्कारों को विधिवत् सम्पन्न करना था।[7] संगीत की शिक्षा ब्राह्मण)त्विज ही तीनों वर्गों को देते थे।

ब्राह्मण चार वंशावलियों में विभाजित हुये। ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी और अथर्ववेदी। गायन, वादन व नृत्य तीनों का विकास वैदिक युग में हुआ। वीणा, वाद्य का विकास इस युग में हो चुका था। गायन के साथ इसका प्रयोग भी हो चुका था। वीणा वादन प्रायः नारियाँ ही किया करती थी। संगीत के विशेष आयोजन होते थे जिसमें नर्तकियाँ उन्मुक्त प्रांगण में भाग लिया करती थी। समाज में नृत्य का प्रतिष्ठित स्थान था। पुरुष भी नृत्य में रुचि रखते थे। ऋग्वेद का श्लोक ;5/33/6द्ध "नृत्यमनो अमृता" इसका प्रमाण है कि नृत्य कला इस काल में बहुत विकसित थी।

प्रसि(विद्वान रोजयोर्क कथन है कि "वैदिक युग में कलाकारों का चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल एवं उच्चकोटि का था। वे सामान्य प्रलोभनों में नहीं फंसा करते थे। कला की साधना हेतु वे बड़ा आकर्षण त्याग करने को तैयार रहते थे।"

ऐसा माना जाता था कि वैदिक काल में ऋग्वेद से ही संगीत की उत्पत्ति हुई थी। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि ऋग्वेद काल में गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का पर्याप्त प्रचलन था। ऋग्वेद में गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायत्र, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग पाया जाता था। इस वेद की ऋचाएं 'स्तोत्र' कहलाती थी। आधुनिक युग में वैचित्र्य निर्माण के लिए जिस प्रकार गीत की पंक्ति तथा पदों का गान अनेक बार विविध स्वरों के साथ किया जाता है, वही प्रकार वैदिक संगीत के 'स्तोम' के नाम से प्रसिद्ध था।[8]

गीत प्रबन्ध एक परम्परागत गीत का प्रकार है, जिनका गायन धार्मिक तथा लौकिक समारोहों में किया जाता था। उनके **'गाधिन'** या **'गायत्रिन'** कहलाते थे। **'गाथा'** के लिये **'साम'** नाम भी सम्बोधित किया जाता था।

ऋग्वेद काल में गायन के साथ ही वाद्य का निरन्तर प्रयोग रहा। जैसे– दुन्दुभि बाण, नाड़ी वेणु, कर्कटि, गर्गर, गोधा, पिंग तथा अर्घाटे। मंगल वाद्य के रूप में 'वीणा' का प्रयोग बहुलता से किया जाता था।

इस काल में गायन–वादन के साथ नृत्य का प्रचुर अस्तित्व पाया जाता है। नृत्य का कार्यक्रम खुले प्रांगण में जन समूह के सम्मुख होता था जिसमें नर–नारियाँ दोनो भाग लेते थे।

मांगलिक दृष्टिकोण से यजुर्वेद में कोई विशेष उपलब्धि नहीं हुई किन्तु सूत्रग्रन्थों के अनुसार यजुर्वेद की शुक्ल तथा कृष्ण दोनों शाखाओं में सामवेद का प्रभूत प्रशस्ति गान हुआ है।[9] यजुर्वेद संहिता में वीणा, बाण, तूणव, दुन्दुभि, भूमि दुन्दुभि, शंख तथा तलब आदि वाद्यों का उल्लेख है। अश्वमेघ यज्ञ के निमित्त गाथा गान तथा वीणादि वाद्यों के वादन का उल्लेख मिलता है। वाङ्गमय स्पष्ट करते हैं कि तत्कालीन दास वर्ग में भी संगीत का प्रसार था। साम जैसे वैदिक संगीत के अतिरिक्त गाथा, नाराशंसी आदि लौकिक संगीत का प्रचार तत्कालीन जनता में था। गाथाओं के दो भेद गाये जाते थे, जिनमें विशुद्ध गाथाएं उच्च श्रेणीय मानी जाती थी, तथा नाराशंसी की निम्न श्रेणीय माना जाता था।[10] साम गान के साथ स्वर संगति तथा वीणा–संगति दोनों तत्कालीन महिलाओं की संगीत विषयक कुशलता का परिचायक थे।

मुख्य रूप से यजुर्वेद में उन मंत्रों का संकलन है जिनका गायन यज्ञादि के अवसर पर कर्मकाण्ड के लिए होता था।[11] इसमें चार गायक होते थे, जिनको क्रमशः होता, अध्यर्थ, उद्गात तथा ब्रह्मा कहते थे। यज्ञादि का संचालन अध्वर्यु नामक ऋत्विज करते थे।

चारो वेदों में अथर्ववेद का स्थान विशिष्ट रहा है। सुखपद एवं मंगलकारी मंत्रों को 'अर्थर्वन्' शब्द से अभिहित किया जाता है। अथर्ववेद में गन्धर्व तथा अप्सराओं का देवीकरण विशद रूप में पाया जाता है। ये अप्सराएं गंधर्वों की पत्नियाँ, अत्यन्त तेजस्विनी होती है और अपने नृत्य में सर्वत्र आनन्द का प्रसार करती हैं। इस काल में सुखद वैवाहिक जीवन की कामना हेतु गन्धर्वों की प्रार्थना की जाती थी तथा इस युगल को हबि प्रदान की जाती थी।

वाद्यों के अन्तर्गत आघाट, कर्कटी तथा दुन्दुभि का उल्लेख बारम्बार प्राप्त होता है। शत्रुओं को परास्त करने वाले साधनों में दुन्दुभि का विशेष विवरण अथर्ववेद में पाया जाता है। इस काल में दुन्दुभि लकड़ी की बनाई जाती थी तथा उसका मुख चमड़े का होता था। दुन्दुभि की गर्जन भरी ध्वनि वीरों के हृदय में पौरुष तथा शत्रुओं के हृदय में आतंक का संचार एक साथ ही करती है।

इस काल में 'गोपथ' नामक ब्राह्मण में 'विप्रो' के लिये संगीत निषिद्ध माना गया है।

सामगान की समृद्धि अथर्वकाल में हो चुकी थी। सामगान यज्ञ–कर्म के लिये ओज, बल तथा मंगल प्रदान करते हैं। अथर्ववेद में साम के पाँच विभाग हिंकार, प्रस्ताव, स्वर आदि का विवरण प्राप्त होता है। साम का गायन पितरों की इष्टपूर्ति हेतु होता था।

वेद चतुष्टयी में सामवेद का, प्राचीन सांगतिक दृष्टि से विशिष्ट स्थान है। यही वह ग्रन्थ है जिसके रूप में भारतीय संगीत सरिता का स्रोत, अनादि रूप में प्रवाहित हो रहा है। कहा जाता है क साम संगीत से ही भारतीय संगीत का व्यवस्थित विकास हुआ। श्रीमद्भगवद्गीता में सामवेद को ईश्वरीय अंश माना गया है :– "वेदानां सामवेदोऽस्मि।" जैमिनीय सूत्र के अनुसार गाये जाने जाने वाले मंत्र 'साम' कहलाते हैं जो ऋचाओं के आश्रय से यज्ञ वेदियों के समक्ष देवताओं को प्रसन्न करने के लिए किया जाता रहा है। अतएव सामवेद, ऋग्वेद का गेय रूपान्तर मात्र है।[12] सामवेद के सभी मंत्र ऋग्वेद से ही संग्रहीत है अन्तर केवल यह है कि जहाँ ऋग्वेद का पाठ आधुनिक गायन से रहा, वहाँ 'सामवेद' का गायन विशिष्ट स्वराबलियों से युक्त शास्त्रीय संगीत के समान रहा। साम का स्वरमय स्वरूप जिस ग्रन्थ से संकलित हुआ है, उसे 'गान–संहिता' अर्थात् "मान–ग्रन्थ" संज्ञा प्राप्त है। साम का आरम्भ 'ओम्' स्वर से किया जाता है– "ओमिति समान गायन्ति" (तैत्तरीय उपनिषद् 81) सामगान का अवसान भी इसी स्वर से होता है।

यज्ञ में देवताओं की आराधना, सामवेदीय मंत्रों द्वारा की जाती थी। गांधर्व वेद को सामवेद का ही उपवेद माना गया है। ऋचाओं के ही संगीतमय परायण से सामगान का प्रथम विकास ऋषियों द्वारा किया गया। ऋचा सामगान का आधार है, जैसे छांदोग्य उपनिषद् से वर्णित है– "ऋचि अध्यूढं साम गीतये" सामगान का सम्बन्ध वेदाध्यायी वर्ग से रहा है।

वैदिक वांगमय में स्वरान्त् त्रिविधि बताए गये हैं–

"आर्थिक, गाथिक और सामिक"। मुख्यतः जिन स्वरों का व्यवहार होता है, वे उदात्त, अनुदात्त और स्वरित कहलाते हैं। वैदिक काल में मंत्रों का गान इन्हीं स्वरों के आधार पर होता रहा।

पाणिनी ने सप्तस्वरों को उदात्त, अनुदात्त व स्वरित के अन्तर्गत इस प्रकार विभाजित किया है–

उदात्ते निषाद गांधारावनुदात्ते ऋषभ धैवतो।

स्वरित प्रभवां ह्येते षड्जमध्यम पंचमाः।।

पतंजलि के अनुसार 'स्वर' वे हैं जो स्वयं विराजित होते हैं–

"स्वयं राजन्ते इति स्वराः।"

अर्थात् उदात्त अनुदात्त स्वरित

नि, ग रे, ध स, म, प

सामगान में छन्द गेय होते थे। उस समय इन छन्दों को एक विचित्र स्वर विन्यास के साथ गाने की प्रथा थी। सामगान के मुख्य तीन भाग होते थे– प्रस्ताव, प्रतिहार और उद्गीत। उनके तीन उपांग–हिंकार, उपद्रव व निधान थे। आगे चलकर इन्हीं में से ध्रुपद के चार पद बने।

साम गायन के दो रूप प्रचलित थे।

1. आर्थिक 2. गान संहिता

आर्चिक में ऋग्वेदीय ऋचाओं के बोल थे और गान संहिता में केवल गीत के बोल थे। गायन का रूप देने के लिए कुशल गायको को थोड़ा परिवर्तन करने की छूट थी।

सामगान का साहित्य भी बहुत विशद है। विद्वानों के अनुसार सामवेद की आर्थिक संहिता में कुल 8000 (आठ हजार) मंत्र थे और उनके गायकों की संख्या 14820 ;चौदह हजार आठ सौ बीसद्ध थी।

संगीत के विकास की दृष्टि से वैदिक काल में तैत्तरीय उपनिषद्, ऐतरेय उपनिषद्, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों का यथेष्ट दिग्दर्शन किया गया।

वैदिक युग में वीणा वाद्य का विशेष महत्त्व था। वीणा वाद्य के अनेक नाम थे, जैसे– महती, पिनाकी, कात्यायनी, रावणी, मत्त, घोषवती, कच्छपी, कुजिंगा आदि। इस काल की एक विशेष उपलब्धि स्पष्ट होती है– कि आर्यों ने संगीत में परिवर्तन लाने हेतु इसे धर्म के आवरण में लपेट दिया। यह उसी का परिणाम है कि भारतीय संगीत आज भी अपनी उच्च मर्यादा को अक्षुण्ण रख सका। धर्म और संगीत का सामंजस्य हो जाने से संगीत गंगाजल के समान पवित्र हो गया। आर्यों के जीवन का प्रत्येक क्षेत्र संगीतमय था। इन्होंने देवताओं को प्रसन्न करने हेतु संगीतमय स्तुति का माना। वैदिक काल की मान्यता रही है कि "संगीत की सत्ता से पृथक ईश्वर की सत्ता नहीं है।"

सन्दर्भ–सूची

1. मतंग, वृहद्देशी श्लोक 16
2. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर 1–2
3. शारंगदेव : संगीत रत्नाकर, प्रथम अध्याय, श्लोक 21

4. द्र0 पूर्व मेघ, 56 (वही)
5. प्राप्त–पृ0सं0 4 भारतीय संगीत का इतिहास शरद्चन्द्र परांजये
6. स्वतन्त्र शर्मा, भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ0 8
7. राम अवतार वीर, भारतीय संगीत प्रथम भाग, पृ0 42
8. डॉ0 शरद चन्द्र परांजपे यास्क के अनुसार स्त्रोम गायन की विधि अत्यन्त प्राचीन है ऋषि दर्शनात् स्तोमान ददर्श" (नैगमकाण्ड 2–11) प्राप्त भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 45
9. डॉ0 शरद् चन्द्र परांजये' भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 27
10. वही, पृ0 38
11. स्वतन्त्र शर्मा भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 14
12. संगीत, मार्च 89